अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अङ्क के श्लोकों (1 से 25 तक) का अनुवाद

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री

ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।

यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः

प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।

जो (मूर्ति) सृष्टिकर्ता विधाता (ब्रह्मा) की प्रथम रचना है (अर्थात् जलरूप मूर्ति), जो (मूर्ति) विधिपूर्वक हवन की गयी (अग्नि में डाली गयी) हवि को (देवताओं के पास) ले जाती है (अर्थात् अग्निरूप मूर्ति), और जो (मूर्ति) हवन करने वाली है (अर्थात् यजमानरूप मूर्ति), जो दो (मूर्तियाँ) समय का विधान (निर्माण) करती हैं (अर्थात् दिन और रात्रि को बनाने वाली सूर्य और चन्द्ररूप मूर्तियाँ), श्रवणेन्द्रिय (कान) का विषय (शब्द) ही है गुण जिसका ऐसी जो (मूर्ति) संसार को व्याप्त करके स्थित है (अर्थात् आकाशरूप मूर्ति), जिस (मूर्ति) को (विद्वान्) समस्त बीजों का कारण कहते हैं (अर्थात् पृथ्वीरूप मूर्ति), (और) जिस (मूर्ति) से प्राणी (जीवधारी) प्राण वाले (जीवित) हैं (अर्थात् वायुरूप मूर्ति)- उन प्रत्यक्ष आठ मूर्तियों से युक्त (समन्वित) अष्टमूर्ति शिव आप लोगों की रक्षा करें।

आ परितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।।

विद्वानों के सन्तोष तक (अर्थात् जब तक विद्वान् सन्तुष्ट न हो जायें तब तक) मैं अपनी अभिनयकुशलता (अभिनयकौशल) को ठीक (सफल) नहीं मानता (समझता) (क्योंकि) विशेष रूप से (अत्यधिक) शिक्षित लोगों का भी चित्त (मन) अपने ऊपर विश्वासरहित (होता है)।

सुभग सलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः।

प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।।

सुखकर (अच्छा) लगता है जल में स्नान करना जिनमें, गुलाबों (पाटल) के सम्पर्क से सुगन्धित हो जाती है वन की पवन जिनमें, सघन (घनी) छाया में सरलता से आती है नींद जिनमें, ऐसे दिन शाम के समय मनोहर (होते हैं) (अर्थात् ग्रीष्म ऋतु के दिनों में जल में स्नान करना सुखद प्रतीत होता है, वन की वायु गुलाबों के संसर्ग से सुगन्धित हो जाती है, घनी छाया में सरलता से नींद आती है और सायंकाल रमणीय होता है)।

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।

अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि।।

युवतियाँ (सुन्दरियाँ) दया करती हुई भ्रमरों (भौंरों) के द्वारा कुछ कुछ (थोड़े-थोड़े) चूमे गये (आस्वादित) कोमल केसर शिखा से युक्त शिरीष पुष्पों (शिरस नामक वृक्ष के फूलों) को (अपने) कानों का आभूषण बना रही हैं।

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।

एष राजेव दुष्यन्तः सारंगेणातिरंहसा।।

अत्यधिक वेग वाले मृग के द्वारा इस राजा दुष्यन्त के समान मैं तुम्हारे मनोहर गीत राग (गाने की ध्वनि) से बलात् (बलपूर्वक) हर लिया गया हूँ (अर्थात् जिस प्रकार अत्यन्त वेग से भागते हुए मृग के द्वारा राजा दुष्यन्त दूर ले जाये जा रहे हैं, उसी प्रकार तुम्हारे मनोहर संगीत की ध्वनि के द्वारा मेरा मन मोह लिया गया है)।

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।

मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम्।।

कृष्णसार हरिण के ऊपर और प्रत्यञ्चा चढ़ी हुई धनुष से युक्त आप (दुष्यन्त) के ऊपर दृष्टि डालता हुआ (मैं) मानो हरिण का पीछा करते हुए साक्षात् धनुर्धारी शिव को देख रहा हूँ।

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः

पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।

दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा

पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।।

देखो, पीछे दौड़ते हुए (हमारे) रथ पर पुनः पुनः गर्दन मोड़कर मनोहरता से दृष्टि डालता हुआ, बाण लगने के भय के कारण (अपने) अधिकांश पिछले अर्धभाग से अगले भाग में सिमटा हुआ (अर्थात् शरीर के पिछले भाग को अगले भाग की ओर समेटे हुए), श्रम (थकावट) के कारण खुले हुए मुख से अर्धचर्वित (आधे चबाये हुए) कुशों से मार्ग को व्याप्त करता हुआ, ऊँची छलाँग (चौकड़ी) भरने के कारण आकाश में अधिक (और) पृथ्वी पर कम दौड़ रहा है।

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया

निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।

आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया

धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः।।

लगाम की रस्सियाँ ढीली कर दी जाने पर ये रथ के घोड़े मानो हरिण के वेग को सहन न कर सकने के कारण शरीर के आगे के भाग को फैलाये हुए, (शिर पर विद्यमान) कलँगी (चमर) के निश्चल अग्रभाग (शिखा) से युक्त, निश्चेष्ट तथा ऊपर उठे हुए कानों वाले, अपने (पैरों के) द्वारा उठायी (उड़ायी) गयी भी धूलि से अलङ्घनीय (होकर) दौड़ रहे हैं।

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद् विपुलतां

यदद्धा विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।

प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-

र्न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्।।

रथ के वेग के कारण जो (वस्तु) (दूर से) देखने में छोटी (दिखलायी पड़ती है), वह अकस्मात् विशालता को प्राप्त हो जाती है (अर्थात् बड़ी हो जाती है)। जो (वृक्षादि वस्तु) वस्तुतः विभक्त (कटी हुई, टूटी हुई) है, वह जुड़ी हुई सी (मिली हुई सी) (प्रतीत) होती है। जो (वस्तु) स्वभावतः टेढ़ी है, वह भी आँखों के लिए सीधी-सी (हो जाती है)। क्षण भर के लिए भी कोई (वस्तु) न मुझसे दूर है और न पास है।

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्

मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवारितः।

क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं

क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते।।

इस कोमल मृग-शरीर (हरिण के शरीर) पर रुई के ढेर पर अग्नि के समान यह बाण न चलाइये (न छोड़िए), न चलाइये (न छोड़िये)। हाय! बेचारे हरिणों का अत्यन्त चञ्चल प्राण (जीवन) कहाँ और तीक्ष्ण प्रहार करने वाले वज्र के समान कठोर आप के बाण कहाँ!

तत् साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।

आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।।

इसलिए अच्छी प्रकार धनुष पर चढ़ाये गये बाण को उतार लीजिए। आप का शस्त्र दुःखितों (पीड़ितों) की रक्षा के लिए (है), निरपराध पर प्रहार करने के लिए (निरपराध को मारने के लिए) नहीं।

जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव।

पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि।।

जिसका पुरु के वंश में जन्म (हुआ है), (उस) आपके लिए यह (= तपस्वी के कहने से बाण को धनुष से उतारना) अत्यन्त उचित है। इसी प्रकार के गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र को (आप) प्राप्त करें।

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य।

ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मोर्वीकिणाङ्क इति।।

तपस्वियों की निर्विघ्न (विघ्नों से रहित) रमणीय (यज्ञादि) क्रियाओं को अच्छी तरह देखकर, 'धनुष की डोरी (प्रत्यक्षा) की रगड़ से उत्पन्न चिह्न के द्वारा अलङ्कृत मेरी भुजा (प्रजा की) कितनी रक्षा करती है', यह जान लोगे।

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः

प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलमिदः सूच्यन्त एवोपलाः।

विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-

स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः।।

(कहीं पर) वृक्षों के नीचे तोतों से युक्त कोटरों (पेड़ के खोखले भागों) के अग्रभाग (द्वार) से गिरे हुए नीवार (जङ्गली धान) (दिखलायी पड़ रहे हैं)। कहीं पर इङ्गुदी के फलों को तोड़ने वाले चिकने पत्थर ही दिखलायी पड़ रहे हैं (कहीं पर) विश्वास उत्पन्न हो जाने के कारण निःशङ्क (निर्भय) गति वाले हरिण (रथ की) ध्वनि (घरघराहट) को सहन कर रहे हैं (अर्थात् रथ की ध्वनि को निर्भय होकर सुन रहे हैं- भय से इधर-उधर नहीं दौड़ रहे हैं) और (कहीं पर) जलाशयों (सरोवरों) की ओर जाने वाले मार्ग वल्कलवस्त्रों के अग्रभाग (सिरे, छोर) से टपकने वाले (जल की) रेखा से चिह्नित (दिखलायी पड़ रहे हैं)।

कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो धौतमूला

भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधुमोद्गमेन।

एते चार्वागुपवनभुवि च्छिन्नदर्भाङ्कुरायां

नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति।।

हवा के कारण चञ्चल नालियों (कृत्रिम नदियों) के जल से वृक्षों की जड़ें धुली हुई हैं। (हवन किये हुए) घृत के धूम (धुएँ) के उठने से कोमल पत्तों की कान्ति की लालिमा (ललाई) नष्ट हो गयी है और ये निर्भीक हरिणों के बच्चे, जहाँ पर कुशों के अङ्कुर काट लिए गये हैं ऐसी, उद्यान भूमि पर समीप में ही धीरे-धीरे घूम रहे हैं।

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।

अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।।

यह आश्रम का स्थान शान्त है और (मेरी दाहिनी) भुजा फड़क रही है। यहाँ इस (दाहिनी भुजा के फड़कने) का फल कहाँ (प्राप्त हो सकता है)? अथवा भावी (होनहार) घटनाओं के द्वार (मार्ग, उपाय) सभी स्थानों पर हो जाते हैं।

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।

दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः।।

अन्तःपुर (रनिवास) में दुर्लभ यह शरीर (लावण्य) यदि आश्रम में निवास करने वाले व्यक्ति का (है, तो) निश्चय ही उपवन की लताएँ जङ्गल की लताओं से (सौन्दर्यादि) गुणों के द्वारा तिरस्कृत कर दी गयी हैं (अर्थात् जङ्गल की लताओं ने अपने गुणों से उपवन की लताओं को परास्त करदिया है)।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।

ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।।

जो ऋषि (कण्व) स्वभाव से (किसी बनावट के बिना) ही सुन्दर (शकुन्तला के) इस शरीर को, खेद है कि तपस्या करने के योग्य बनाने की इच्छा करते हैं, वह निश्चय ही नीले कमल के पत्ते की धार (अग्र भाग) से शमी (वृक्ष) की लता को काटने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे

स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।

वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां

कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण।।

कन्धे पर लगायी गयी छोटी गाँठ वाले (और) स्तनों के विस्तार को ढक लेने वाले वल्कल-वस्त्र से इस (शकुन्तला) का यह नवीन (अर्थात् यौवनयुक्त) शरीर, पीले पत्तों के मध्य-भाग से ढके हुए पुष्प के समान अपनी शोभा को पुष्ट (धारण) नहीं कर रहा है।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्य-

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।

सेवार (शेवाल) से आच्छादित (घिरा हुआ) भी कमल रमणीय (मनोहर) (लगता है)। मलिन (काला) कलङ्क भी चन्द्रमा की शोभा को बढ़ाता है। वल्कल-वस्त्र से भी यह कृशाङ्गी (शकुन्तला) अत्यन्त सुन्दर (लग रही है) क्योंकि सुन्दर (रम्य) आकृतियों (शरीरों) के लिए कौन-सी वस्तु अलङ्कार नहीं होती है) (अर्थात् सभी वस्तुएँ आभूषण बन जाती हैं)।

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणी बाहू।

कुसुममिव लोभनीयं योवनमङ्गेषु सन्नद्धम्।।

अधरोष्ठ (नीचे का ओठ) नवपल्लव (नए पत्ते) के समान लाल (है), भुजाएँ कोमल शाखाओं (डालियों) के सदृश हैं (और इसके) अङ्गों में पुष्प की भाँति लुभावना (मनोहर) यौवन व्याप्त (है)।

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।।

(यह शकुन्तला) निःसन्देह क्षत्रिय के द्वारा पत्नी के रूप में ग्रहण करने के योग्य (= विवाह करने के योग्य) है, जिससे कि मेरा श्रेष्ठ मन इस (शकुन्तला) में अभिलाषा से युक्त (है) (अर्थात् इसे चाहता है) क्योंकि सन्देहास्पद वस्तुओं (विषयों) में सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ (आत्मा की आवाज) ही प्रमाण (=निर्णय का कारण) (होती हैं)।

चलापाङ्गं दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं

रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।

करो व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं

वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकरं हतास्त्वं खलु कृती।।

(अभिलाषा के साथ देख कर) हे भ्रमर, (तुम) चञ्चल नेत्र प्रान्त (नेत्र के किनारों) वाली तथा काँपती हुई दृष्टि (नेत्रों को) बार-बार छू रहे (चूम रहे) हो। रहस्य की बात (गुप्त बात) कहने वाले की भाँति कान के समीप विचरण करते हुए मधुर (धीरे-धीरे) गुञ्जार (गुञ्जन) कर रहे हो। हाथों को हिलाती हुई (इस शकुन्तला) के प्रेम के सर्वस्वभूत (रतिक्रीड़ा के सार) अधर को पी रहे हो (अर्थात् निचले ओठ का चुम्बन कर रहे हो)। हम (राजा दुष्यन्त) (तो) तथ्य के अन्वेषण (अनुसन्धान) में (ही) मारे गये, तुम निश्चय ही कृतकृत्य (सफल) हो गये।

कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुविनीतानाम्।

अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु।।

दुष्टों के शासक (दण्ड देने वाले) पुरुवंश में उत्पन्न (राजा दुष्यन्त) के पृथ्वी (भूमण्डल) का शासन करने पर कौन यह भोली-भाली तपस्वी कन्याओं के साथ अशिष्टता का व्यवहार (आचरण) कर रहा है।

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः।

न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।।

मानव स्त्रियों (मनुष्य-लोक की स्त्रियों में) इस सौन्दर्य (रुप) की उत्पत्ति कैसे हो सकती है (अर्थात् नहीं हो सकती)। कान्ति से चमकती हुई बिजली (ज्योति) भूमि (भूतल) से उत्पन्न नहीं होती है।